Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

13

पत्थलगढ़ी: आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध का स्वर - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रा.डॉ. नवनाथ गोरक्षनाथ भोंदे
पेमराज सारडा महाविद्यालय, अ.नगर

भारत के आदिवासी समाज ने अपने सांस्कृतिक अस्तित्व और आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा के लिए सदियों से संघर्ष किया है। पत्थलगढ़ी इस संघर्ष की एक सशक्त अभिव्यक्ति है, जिसमें आदिवासी समुदाय अपने पूर्वजों की परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए अपनी अस्मिता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। पत्थलगढ़ी न केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक है, बल्कि यह भूमि, जल और जंगल पर अधिकार की पुनःस्थापना का घोषणापत्र भी है। अनुज लुगुन का काव्य संग्रह 'पत्थलगढ़ी' इसी आदिवासी चेतना और प्रतिरोध के स्वर को प्रकट करता है। उनकी कविताएँ आदिवासियों के अनुभवों, संघर्षों और आत्मसम्मान की कहानियाँ कहती हैं। इन रचनाओं में ऐतिहासिक अन्यायों, सांस्कृतिक दमन और सत्ता की नीतियों के विरुद्ध जनप्रतिरोध की भावना झलकती है। साथ ही आदिवासी समाज की अस्मिता, प्रतिरोध और संघर्ष को विश्लेषित किया गया है। इसके माध्यम से आदिवासी संस्कृति की जीवंतता, उनकी सामूहिक चेतना और अपने अधिकारों की रक्षा हेतु किए गए प्रयासों को समझने की कोशिश की गई है।

अनुज लुगुन की कविताएँ यह स्पष्ट करती हैं कि आदिवासी अस्मिता केवल जातीय या भौगोलिक पहचान नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक स्मृति और जीवनपद्धति है। यह अस्मिता प्रकृति से जुड़ी है – जंगल, नदी, चूल्हा, माँदल, भाषा और परंपरा के सह-अस्तित्व से बनी है।

"उन्होंने तो सिर्फ इतना ही कहा
कि पत्थर उनकी पहचान का प्रतीक है..."[1]

यहाँ 'पत्थर' स्थायित्व और परंपरा का द्योतक है, जिसे 'गाड़ना' अस्मिता की घोषणा है। आदिवासी समाज की आत्म-पहचान अपने प्राकृतिक व सांस्कृतिक परिवेश में रची-बसी है – जिसे बहुसंख्यकवादी राष्ट्रवाद अक्सर 'जंगली' या 'असभ्य' कह कर नकारता है। यह अस्मिता किसी कृत्रिम राजनीतिक पहचान पर नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, समुदायिक स्मृति और परंपरा के प्रतीकों पर आधारित है, जिसकी अभिव्यक्ति 'पत्थलगढ़ी' जैसे रचनात्मक आंदोलनों में देखी जा सकती है।

अनुज लुगुन की कविताओं में सत्ता के द्वारा किए जा रहे दमन और उससे उपजे प्रतिरोध की तीव्र चेतना है। 'मेरे गाँव में सीआरपीएफ कैम्प लग गया है' कविता में सत्ता की सैन्य उपस्थिति को लोकतंत्र के विपरीत एक हिंसात्मक कार्रवाई के रूप में देखा गया है:

"गाँव में 'सीआरपीएफ कैम्प लग गया है'
यह सामान्य कथन नहीं है..."[2]

यहाँ प्रतिरोध केवल भावनात्मक नहीं, वैचारिक और ऐतिहासिक है। कवि ताऊजी (नक्सली), चाचा (पुलिस अधिकारी) और स्वयं कवि — तीनों की उपस्थिति एक बहुस्तरीय आत्मसंघर्ष और सत्ता के चरित्र की आलोचना का अवसर देती है। यह प्रतिरोध वर्गीय, जातीय, और सांस्कृतिक रूप से जुड़ा हुआ है और लोक चेतना का रूप धारण करता है, जो सत्ता द्वारा थोपी गई 'राष्ट्रीयता' की संकीर्ण व्याख्या को चुनौती देता है।

कविता 'पत्थलगढ़ी' में यह कहा गया है कि:

"हिन्दी आदिवासियों की मातृभाषा नहीं है
...फिर भी वे पत्थर फेंकने के दोषी माने गये।"[3]

यहाँ भाषा एक सत्ता-औजार के रूप में सामने आती है, जो बहुल सांस्कृतिक आवाज़ों को दबाकर एकसांस्कृतिकता को थोपने का काम करती है। 'पत्थर फेंकना' मुख्यधारा की हिंसा की भाषा है, जबकि आदिवासी 'पत्थर गाड़ते' हैं – पहचान स्थापित करने के लिए। भाषा का वर्चस्व एक सांस्कृतिक नियंत्रण की प्रक्रिया है, जिसके खिलाफ यह काव्य एक आत्म-निवेदन और असहमति का साहित्यिक प्रतिरोध प्रस्तुत करता है।

कविता 'मुझे मेरी नागरिकता दे दो' में कवि केवल कागज़ी नागरिकता नहीं, एक मानवीय, गरिमामयी अस्तित्व की माँग करता है:

"मुझे मेरी जुबान आज़ाद दे दो
मुझे मेरी श्रमशील नागरिकता दे दो।"[4]

यह कविता उस लोकतंत्र की विफलता को उजागर करती है, जो अपने हाशिये के नागरिकों को केवल पहचान-पत्रों में सीमित कर देना चाहता है, न कि अधिकार, गरिमा और सामाजिक समावेशन में। यह प्रतिरोध भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को पुनः परिभाषित करने का आह्वान करता है — जिसमें श्रम, भूमि, भाषा और संस्कृति के सम्मान को नागरिकता का आधार माना जाए।

©Copyright 2024 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 3.4 September-October 2025 / VOL -02 ISSUE-II

'पानी में घुसी औरतें', 'मेरी माँ और भेड़िए', 'परदे से गुम हो गयीं स्त्रियाँ' जैसी कविताएँ स्त्री को प्रतिरोध की अग्रणी भूमिका में स्थापित करती हैं। यह स्त्रियाँ जल-सत्याग्रह करती हैं, गुरिल्ला बनकर लड़ती हैं, और जंगल से अपने बच्चों की रक्षा करती हैं।

"कविता में यह बेतुकी बात हो सकती है
कि एक माँ रायफल चलाती है
लेकिन आलोचकों को यह बात स्वीकार करनी चाहिए।"[5]

स्त्री यहाँ सिर्फ भावनात्मक संरक्षक नहीं, सामाजिक यथार्थ की साक्षात अभिव्यक्ति है — जुझारू, जागरूक, और निर्णायक। कविता स्त्री के भीतर के उस प्रतिरोध को पहचानती है, जो पितृसत्तात्मक समाज में अदृश्य रखा जाता है। यह प्रतिरोध आत्मरक्षा, संस्कृति और न्याय तीनों स्तरों पर सक्रिय है।

'पचपन बरस की मज़दूरी', 'चाय बागान की अंग्रेज़ी मशीन', 'मज़दूरों की मौत का सदमा लाल किले को नहीं होता' — ये कविताएँ एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था की आलोचना हैं जिसमें पूँजी के लिए मनुष्य का श्रम शोषित होता है और पहचान खो जाती है।

"मज़दूरों की मौत का सदमा लाल किले को नहीं होता।"[6]

भूख और विस्थापन केवल आर्थिक संकट नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और मानवीय त्रासदी है — जिसे राजनीतिक शुष्कता नज़रअंदाज़ कर देती है। कविता समाज के सबसे हाशियाई वर्गों के आर्थिक संघर्षों को एक सशक्त वैचारिक अभिव्यक्ति देती है, और सत्ता के संवेदनहीन रवैये को उद्घाटित करती है।

अनुज लुगुन की भाषा शिल्प नहीं, शस्त्र है। उनकी कविता किसी सौंदर्यशास्त्रीय बोध या अकादमिक मापदण्डों से बंधी नहीं है, बल्कि प्रतिरोध और असहमति की जीवंत वाणी है।

"तुमने भाषा की कुलीनता को ताक पर रखा
कविता को बताया लोहे की बेड़ियाँ तोड़ने वाला..."

उनकी कविता में व्याकरण नहीं, गुरिल्ला-युद्ध है। यह कविता केवल 'शब्दों की कला' नहीं, 'अर्थ का संघर्ष' है। अनुज लुगुन का काव्य-शिल्प एक वैकल्पिक साहित्यिक परंपरा को जन्म देता है, जिसमें कविता यथास्थिति को नहीं, बल्कि परिवर्तन की चेतना को अभिव्यक्त करती है।

अनुज लुगुन की 'पत्थलगढ़ी' एक शक्तिशाली दस्तावेज़ है, जो आदिवासी अस्मिता के साथ-साथ व्यापक जन-प्रतिरोध की सामाजिक-सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह संग्रह एक वैकल्पिक इतिहास, वैकल्पिक नागरिकता और वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र की स्थापना करता है। कविता यहाँ 'शब्द' नहीं, 'संघर्ष' बन जाती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुज लुगुन का '*पत्थलगढ़ी*' काव्य संग्रह केवल साहित्यिक कृति नहीं है, बल्कि यह आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध का जीवंत दस्तावेज़ है। उनकी कविताएँ समाज के वंचित और उपेक्षित समुदायों की आवाज़ बनती हैं, जो ऐतिहासिक अन्याय और समकालीन शोषण के खिलाफ अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। कवि ने आदिवासी समाज की पीड़ा, उनके संघर्ष और आत्मसम्मान की भावना को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है। पत्थलगढ़ी की परंपरा केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक नहीं है, बल्कि यह स्वायत्तता और आत्मरक्षा की चेतना का परिचायक है। कवि यह संदेश देते हैं कि हर विदा एक नई शुरुआत है और हर संघर्ष एक नई क्रांति की भूमि तैयार करता है।

सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए अनुज लुगुन की कविताएँ प्रेरणा का स्रोत हैं। वे पाठकों को न केवल आदिवासी समाज की वास्तविकता से रूबरू कराती हैं, बल्कि उन्हें इस अन्याय के खिलाफ सोचने और खड़े होने के लिए भी प्रेरित करती हैं।

संदर्भ संकेत

1. पत्थलगढ़ी- अनुज लुगुन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण-2023,पृष्ठ-55
2. वही, पृष्ठ- 79
3. वही, पृष्ठ- 56
4. वही, पृष्ठ- 31
5. वही, पृष्ठ- 91
6. वही, पृष्ठ- 36
7. वही, पृष्ठ- 49